नियमसार, पहली पाँच गाथा का कलश है। १०९ कलश।

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः,
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात्।।१०९।।

श्लोकार्थः — इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा... भेद से भिन्न बताया न ? वास्तव में तो भाई ने तीन शब्द रखे हैं - रंग, राग, और भेद से भिन्न। हुकमचन्द (भारिल्ल ने)। रंग, राग और भेद से भिन्न। रंग शब्द से वर्ण आदि चीज़; राग शब्द से पुण्य-पाप के भाव और भेद शब्द से पर्यायों के भेद। ये गुणस्थान, मार्गणास्थान भेद। रंग, राग, और भेद से भिन्न- ऐसा जो ज्ञानात्मक तत्त्व। **पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है...** पर की-निमित्त की चिन्ता, राग की, भेद की चिन्ता को छोड़ा है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! जहाँ जाना है, वह चीज़ अभेद है। अखण्ड ज्ञान, आनन्द का कन्द, वह पर के विषय ग्रहण से रहित होकर, पर के विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है। आहाहा! भेद है, उसकी भी चिन्ता छोड़ी है। आहाहा!

और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में... स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि ऐसा शब्द है। निज द्रव्य, वह वस्तु; उसके जो ज्ञानादि अनन्त गुण और उसकी जो निर्मल पर्याय है, उसमें जिसकी रमणता है। आहाहा! **निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है,...** निमित्त, संयोग तो अपनी पर्याय में भी नहीं है। कर्म, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, पैसा-लक्ष्मी, वह तो पर्याय में भी नहीं है, वह तो भिन्न है। पर्याय में जो राग-द्वेष है, उनसे भी स्वरूप तो भिन्न है और स्वरूप में, पर्याय का जो भेद दिखता है, वह तो पर्यायदृष्टि से, पर्यायबुद्धि से ज्ञात होता है। वस्तुबुद्धि से उसमें भेद है नहीं। आहाहा!

संसार के किनारे जाना है। आहाहा! जहाँ मुक्ति का मण्डप अन्दर पड़ा है। आहाहा! वह मुक्तस्वरूप ही है। जहाँ रंग और राग से भिन्न तथा भेद से भी भिन्न, ऐसी वह चीज़ मुक्तस्वरूप अभेद चिदानन्द है। आहाहा! वहाँ इसे जाना है।

कितना छोड़ना और किसे ग्रहण करना ? आहाहा!

भेद, रंग और राग का लक्ष्य छोड़कर, अभेद चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्द ध्रुव नित्य, जो सत् है, वह तो त्रिकाल है और सत् है, वह तो एकरूप त्रिकाल अभेद है। उसमें एकाग्र होकर। आहाहा! निज द्रव्य-गुण-पर्याय। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय नहीं। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो पर में गये। वे तो संयोग में गये। वे तो पर्याय में भी नहीं है। भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय तो इस पर्याय में भी नहीं है। मात्र पर्याय में उस ओर की भक्ति आदि का राग है, परन्तु उस राग से भी भिन्न स्वरूप अन्दर है। आहाहा! और राग को जाननेवाली

ज्ञान की अवस्थाएँ, मति-श्रुत आदि के भेद, उससे भी अभेद चीज़ तो अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! अरे रे! अब यहाँ जाना।

ऐसे **स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है,...** ज्ञानानन्द प्रभु ध्रुव अभेद चीज़ जो है, उसमें ज्ञान की पर्याय को... चित्त को अर्थात् ज्ञान की पर्याय को **एकाग्र किया है,...** आहाहा! अब यहाँ कहाँ जाना? चिमनभाई! यह बाहर की उपाधि और... आहाहा! भाई! हित का पन्थ, हित का पन्थ कोई अलग है। अनन्त काल से इसने हित नहीं किया। इसकी दृष्टि निमित्त पर अथवा राग पर अथवा भेद पर रही है। आहाहा! अभेद में-रागरहित में, संयोगरहित चीज़ है, उसमें एकाग्र कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! एकाग्र अर्थात् उसे-एक को दृष्टि में लेकर उसमें लीनता करना। आहाहा!

चित्त एकाग्र किया है, वह भव्य जीव... वह भव्य जीव अल्प काल में मोक्ष के योग्य है। अल्प काल आयेगा। उसका अर्थ करना पड़ेगा फिर। **वह भव्य जीव निज भाव से भिन्न...** निज भाव जो ज्ञायक और ज्ञानानन्द ध्रुवस्वरूप, जो दृष्टि का विषय जो ध्येय, जो पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, ऐसे निज भाव से भिन्न। परद्रव्य भिन्न, राग भिन्न और पर्याय के भेद भी भिन्न। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

अनन्त-अनन्त काल व्यतीत हुआ, चौरासी के अवतार। चौरासी लाख योनि-उत्पत्ति के स्थान। एक-एक योनि में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। उस अभेद की दृष्टि नहीं की, इसलिए (उत्पन्न हुआ है)। आहाहा! जो पूर्ण सत् है, अनादि शाश्वत् है, एकरूप ज्ञायकभाव, एकरूप ध्रुवस्वभाव, एकरूप भाव है, उसकी एकाग्रता के बिना भव का अन्त आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति क्रियाकाण्ड की चाहे जितनी करे, वह सब राग की वृत्तियाँ हैं, वे कोई आत्मा का स्वरूप नहीं है।

स्व-रूप। स्व का रूप जो है, स्व का भाव जो है, वह तो त्रिकाली ज्ञायक ध्रुव चैतन्य है, उसमें एकाग्र होकर.. आहाहा! सकल भाव **निज भाव से भिन्न...** निज भाव, ज्ञायकभाव, चिदानन्दभाव - उससे भिन्न, **ऐसे सकल विभाव को छोड़कर...** अर्थात् भेद के भाव को भी छोड़कर। आहाहा! राग के विकल्प को तो छोड़कर, वह तो ठीक, परन्तु भेदभाव को भी छोड़कर। क्योंकि भेदभाव में भी विभाव है। वह भेदभाव भी कर्म के निमित्त से हुए भेद हैं। वे वस्तु में नहीं हैं। आहाहा!

निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को

प्राप्त करता है। अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है, इसमें क्रमबद्ध कहाँ आया? यह तो थोड़े काल में प्राप्त करता है, ऐसा कहा। जिस काल में मुक्ति होनी है, उस काल का यहाँ कहाँ आया? यहाँ तो अल्प काल में कहा है। उसका अर्थ ही यह हुआ, प्रभु! कि जिसने निज भाव को ग्रहण किया और परभाव को छोड़ा, उसे अब अल्प काल में ही, उसके क्रम में केवलज्ञान आनेवाला है। अल्प काल में अर्थात् कुछ काल आगे-पीछे हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? है न? अल्प काल में शब्द है। **अचिरात्**— संस्कृत में **अचिरात्** है। अल्प काल में। आहाहा! इसका अर्थ ही यह है। जिसने भगवान पूर्णानन्द के नाथ को पकड़ा, उसमें चित्त को एकाग्र किया, उसे अब थोड़े काल में ही केवलज्ञान की प्राप्ति का क्रम है। क्रमबद्ध में थोड़े काल में ही केवल (ज्ञान) होनेवाला है, उसे लम्बा काल नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। क्रमबद्ध टूटे नहीं और अल्प काल में मुक्ति हो, इसका अर्थ यह है। समझ में आया? आहाहा!

सकल विभाव को छोड़कर... सम्पूर्ण स्वभाव में एकाग्र होकर। आहाहा! उसे तो अल्प काल में परमानन्द की / मुक्ति की प्राप्ति है। उसे अब लम्बा काल है नहीं। है क्रमबद्ध में। आहाहा! परन्तु ऐसी जिसकी दृष्टि हुई और सर्व विभाव की चिन्ता छोड़कर पूर्ण स्वभाव में एकाग्र हुआ, उसे पूर्ण की प्राप्ति होने का काल ही अल्प है। उसे क्रमबद्ध में अब काल ही अल्प है। आहाहा! समझ में आया? **अचिरात्** कहा, इसलिए वहाँ क्रमबद्ध बदल जाती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! शब्द तो यह है। इसमें एकाग्र हो, इसलिए उसे क्रम में केवलज्ञान होगा, ऐसा नहीं लिया। उसका अर्थ ही यह हुआ।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ को जिसने पकड़ा.. आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वरूप ज्ञायकभाव में जिसकी एकाग्रता हुई, उसकी पर्याय में केवलज्ञान प्राप्त होने का क्रम ही अब अल्प है। आहाहा! होगी तो जिस समय में मुक्ति होनेवाली है, उसी समय में होगी परन्तु ऐसा जिसने किया, उसे अल्प काल में होगी, ऐसा ही उसमें क्रमबद्ध है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अरे रे! इसने निवृत्ति नहीं ली। अपने हित के लिए फुरसत नहीं मिलती। अहित के काम में फुरसत का काल सब वहाँ व्यतीत करता है। अरे रे!

यहाँ यह कहते हैं कि एक बार प्रभु! तू परभाव और पर के भेदभाव को भी छोड़कर ज्ञानानन्द ध्रुव सत्.. सत्.. सत्.. शाश्वत अभेद चीज़ है, उसमें एकाग्र हो और अभेद में एकाग्र होने से, प्रभु! तुझे अल्प काल में अब केवलज्ञान होनेवाला है। उसे लम्बा काल

नहीं होता। आहाहा! उसकी मुक्ति अल्प काल में है। ऐसे क्रमबद्ध में उसकी मुक्ति अल्प काल में होवे, ऐसा ही उसका काल है। आहाहा!

अरे रे! जगत के बाह्य पदार्थों की विस्मयता, अधिकता और उनके माहात्म्य तथा महिमा के समक्ष इसे भगवान की महिमा नहीं सूझती। आत्मा की अन्दर जो महिमा है, उसके अतिरिक्त जगत की शरीर, वाणी, मन चेष्टाएँ, रंग, राग की इसे विस्मयता और अचिन्त्यता तथा अपूर्वता दिखायी देती है, इसलिए उसमें रुककर भगवान ऐसा अपूर्व स्वभाव है, उसे यह भूल गया है। जिसका माहात्म्य करना चाहिए, उसे भूल गया और जिसका माहात्म्य छोड़ना चाहिए, उसके माहात्म्य में घुस गया। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्दर गलगलाहट हो जाए, ऐसा है। माणेचन्दभाई सवेरे कहते थे। आहाहा! बात ऐसी, बापू! क्या करें? आहाहा!

जिसमें भव और भव के भाव नहीं। अरे! जिसमें भेद नहीं। आहाहा! भव और भव का भाव तो जिस चीज़ में नहीं, परन्तु जिस चीज़ का भेद पड़े, वह भेद भी उस चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... शरीर का दिखाव छोड़ दे, भाई! वह चीज़ कहीं तेरी नहीं है। वह कहीं तेरे कारण नहीं है, वह सब तो जड़ के कारण से है। वह सब दिखाव। आहाहा! पंच रत्न की गाथा है न? आहाहा! वे रत्न नहीं तुम्हारे, ऐई! धूल के रत्न नहीं। आहाहा! यह तो चैतन्य रत्न।

अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञान, अनन्त-अनन्त वीर्य और अनन्त-अनन्त शान्तिरस का पिण्ड प्रभु! शान्त.. शान्त.. शान्त का समुद्र। आहाहा! 'उपशम रस बरसे रे प्रभु तेरे नयन में' आता है न? उपशम रस बरसे प्रभु! आहा! जिसमें उपशम रस, अकषायस्वभाव। शान्त.. शान्त.. शान्त.. शान्त। अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें जो एकाग्र हुआ, उसे पर्याय में पूर्ण शान्ति की प्राप्ति का काल ही अब अल्प है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सव्व सिद्धाणं—ऐसा शास्त्र में पाठ है। वह स्वयं भी अल्प काल में सिद्ध होनेवाला है। वह णमो लोए सव्व सिद्धाणं में आ जाता है। समझ में आया? मूल पूरा पद ऐसा है—णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं - ऐसा है। यहाँ तो णमो अरिहंताणं, फिर उसका अन्तिम आता है, णमो लोए सव्व साहूणं। यह अन्तिम पद सबको लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं।

तदुपरान्त परमागम में यह आया है कि त्रिकालवर्ती... आहाहा! कितना काल लक्ष्य में लिया? कि तीनों काल में वर्तते अरिहन्तों को णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। नमस्कार। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। उसमें स्वयं भी अल्प काल में सिद्ध होनेवाला है तो उसे भी नमस्कार पहुँच जाता है। आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं। किसी को आचार्य का पद आनेवाला होवे तो। न होवे तब तो सीधा साधु, अरिहन्त और सिद्ध होगा। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। यह पूरा पद ऐसा है। धवल में ऐसा लिया है। आहाहा! अरे रे! कहाँ कुछ पड़ी है? कौन यह क्या?

त्रिकाल वस्तु, जिसकी प्रतीति में व्यवहार भी त्रिकाल अरिहन्त, त्रिकाल सिद्ध, त्रिकाल आचार्य, उपाध्याय। आहाहा! जिसकी व्यवहार की विकल्प की श्रद्धा में भी यह त्रिकाली पंच परमेष्ठी जहाँ आ जाते हैं। आहाहा! और उन पंच परमेष्ठी का स्वरूप ही आत्मा का है। आत्मा पंच परमेष्ठी स्वरूप ही है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? वस्तु कहीं पड़ी रही और मार्ग भी कहीं (पड़ा रहा) कहीं दौड़ गया। धर्म के नाम से पन्थ कटे नहीं, पन्थ बढ़ गये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसे निज भाव से **वह भव्य जीव निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है।** आहाहा! अल्प काल में परमात्मा सिद्ध होनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! पंचम काल के प्राणी को भी ऐसा, अप्रतिबुद्ध श्रोता को भी आचार्य ऐसा कहते हैं। पंचम काल के साधु, आचार्य ऐसा कहते हैं कि पंचम काल के जीव भी यदि सर्व भाव को छोड़कर अन्तर एकाग्र होवे तो अल्प काल में मुक्ति होगी। आहाहा! उसे कहते हैं न? यह कहनेवाले पंचम काल के साधु हैं न? सुननेवाले भी पंचम काल के हैं न? आहाहा! भले उन्हें एकाध-दो भव हों, परन्तु वे मुक्ति पानेवाले हैं। आहाहा!

आनन्द के सागर को जहाँ अन्दर में उछाला.. आहाहा! पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उस स्वाद में पंच परमेष्ठी का रूप भी ख्याल में आ गया। आहाहा! और द्रव्यस्वभाव का स्वरूप भी ख्याल में आ गया। वह अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त होगा। पंचम काल के जीव को ऐसा कहे! अभी मुक्ति नहीं न? भाई! सुन न, भाई! ऐसा करेगा,

उसे एकाध-दो भव में भी मुक्ति होगी, वह उसे अल्प काल ही है। टीका में कहीं आता है। वह नहीं आता कहीं पीछे? ऐसा कि ऐसे करेगा उसे मुक्ति होगी। चरमशरीरी और अचरमशरीरी की बात आती है न? उसमें टीका में आता है। 'परम अध्यात्मतरंगिणी' में, दो-तीन भव में मोक्ष जाएगा। भले अचरमशरीरी है, अन्तिम शरीर नहीं है। टीका में है, संस्कृत टीका में। आहाहा! 'परम अध्यात्मतरंगिणी' में है। चरमशरीरी और अचरमशरीरी में यह बात नहीं आती? गाथा में आती है न? तीर्थंकर, अरिहन्त, उसमें आती है न? ऐसे किया सबने। वह गाथा आती है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। अल्प काल में मुक्ति होगी। बहुत ही गाथा.. बहुत ही मांगलिक की है। आहाहा! मांगलिक का मण्डप रोपा है। आहाहा! उसका मांगलिक पूर्ण हो जानेवाला है। आहाहा! जिसे बाहर का रस छूट गया, बाहर की विस्मयता, अचिन्त्यता, अधिकता, महिमा, किसी भी चीज़ की महिमा, इन्द्र के पद की भी महिमा जिसे छूट गयी है। आहाहा! जिसे राग और स्वर्ग का विकल्प भी छूट गया है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, भले पंचम काल में रहा हुआ - जन्मा है, परन्तु कहते हैं कि प्रभु! तू पंचम काल में भी पूर्ण स्वरूप से है या अपूर्ण हो गया है? आहाहा! वस्तु तो त्रिकाल पूर्ण है। उसमें पंचम काल में वह पूर्णता न प्राप्त करे और पूर्ण नहीं है... पूर्ण नहीं है, ऐसा कैसे कहना? और पूर्ण है, उसे पूर्ण की प्राप्ति न हो, ऐसा कैसे कहना? कहते हैं। पाटनीजी! आहाहा!

मुमुक्षु : अजब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भगवान! आहाहा! छोटी-छोटी उम्र के बालक। यह वाल की व्याधि होती है न? वाल की नहीं? मर जाते हैं बेचारे। दस-दस वर्ष की, पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष की उम्र। वाल होता है कहीं। यहाँ एक अपना जैनशाला का लड़का पढ़ता था। पन्द्रह-सत्रह वर्ष का युवक था। आता था। वह यहाँ मर गया। पहले दूसरे में पोस्टमास्टर के यहाँ था। पहले वहाँ था न वहाँ। वह बाहर उतरा नीचे जहाँ पेशाब करने। उड़ गया। कहीं वाल होता है। एक महिमा भी कहती है कि मुझे वाल होता है। हमेशा दवा करने जाना। अपने उसे भी बाल था न? बीनूभाई को। इस हिम्मत के काका को। आहाहा! उसे भी वाल था। कब, कहाँ देह को क्या होगा? वह तो नाशवान है। उसे किस क्षण में कैसे होगा? उसका तुझे क्या काम है? तेरे क्षण को पकड़ न! आहाहा!

यह श्लोक पंच रत्न का योगफल किया है। आहाहा! अब ८२ गाथा।

गाथा-८२

एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि।।८२।।

ईदृग्भेदाभ्यासे मध्यस्थो भवति तेन चारित्रम्।
तद्दृढीकरणनिमित्तं प्रतिक्रमणादिं प्रवक्ष्यामि।।८२।।

अत्र भेदविज्ञानात् क्रमेण निश्चयचारित्रं भवतीत्युक्तम्। पूर्वोक्तपञ्चरत्नाञ्चितार्थपरिज्ञानेन पञ्चमगतिप्राप्तिहेतुभूते जीवकर्मपुद्गलयोर्भेदाभ्यासे सति, तस्मिन्नेव च ये मुमुक्षवः सर्वदा सन्स्थितास्ते ह्यत एव मध्यस्थाः तेन कारणेन तेषां परमसंयमिनां वास्तवं चारित्रं भवति। तस्य चारित्राविचलस्थितिहेतोः प्रतिक्रमणादिनिश्चयक्रिया निगद्यते। अतीतदोषपरिहारार्थं यत्प्रायश्चित्तं क्रियते तत्प्रतिक्रमणम्। आदिशब्देन प्रत्याख्यानादीनां सम्भवश्चोच्यत इति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(अनुष्टुप्)

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।

तथाहि ह्न

इस भेद के अभ्यास से माध्यस्थ हो चारित लहे।
चारित्र दृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें।।८२।।

अन्वयार्थ :—[ईदृग्भेदाभ्यासे] ऐसा भेद-अभ्यास होने पर [मध्यस्थः] जीव मध्यस्थ होता है, [तेन चारित्रम् भवति] इसलिए चारित्र होता है।[तद्दृढीकरणनिमित्तं] उसे (चारित्र को) दृढ़ करने के निमित्त से [प्रतिक्रमणादिं प्रवक्ष्यामि] मैं प्रतिक्रमणादि कहूँगा।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से निश्चय-चारित्र होता है, ऐसा कहा है।

पूर्वोक्त पंच रत्नों से शोभित अर्थपरिज्ञान (-पदार्थों के ज्ञान) द्वारा पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने पर, उसी में जो मुमुक्षु सर्वदा संस्थित रहते हैं, वे उस (सतत भेदाभ्यास) द्वारा मध्यस्थ होते हैं और उस कारण से उन परम संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है। अतीत (-भूत काल के) दोषों के परिहार हेतु जो प्रायश्चित किया जाता है, वह प्रतिक्रमण है। 'आदि' शब्द से प्रत्याख्यानादि का सम्भव कहा जाता है। (अर्थात् प्रतिक्रमणादि में जो 'आदि' शब्द है, वह प्रत्याख्यान आदि का भी समावेश करने के लिये है)।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

'[श्लोकार्थ:—] जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं; जो कोई बँधे हैं, वे उसी के (भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।'

गाथा-८२ पर प्रवचन

एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि।।८२।।

इस भेद के अभ्यास से माध्यस्थ हो चारित लहे।
चारित्र दृढ़ता हेतु हम प्रतिक्रमण आदिक अब कहें॥८२॥

यह मुनिराज पंचम काल के सन्त को कहते हैं। पंचम काल में ऐसा हो सकता है। आहाहा! निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रत्याख्यान, सत्य प्रतिक्रमण, सत्य प्रत्याख्यान, सत्य वन्दन, सत्य भक्ति, सत्य समाधि, सतयोग, उसे अब मैं कहूँगा। आहाहा! पंचम काल के प्राणी भी उसे पहुँच सकेंगे, इसलिए उसे मैं कहूँगा—ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा सहारा न ले कि पंचम काल है, हीनसंहनन है। संहनन हीन है, ऐसा है, वैसा है - ऐसा रहने दे, भाई! वस्तु तो जैसी तीर्थंकर के समवसरण में गया, तब पूर्ण थी, वैसी ही पूर्ण अभी है। आहाहा! उस पूर्ण में कोई अपूर्णता और विपरीतता तो एक अंश भी आयी

नहीं है। आहाहा! परन्तु उस पूर्ण की प्रतीति और पूर्ण का अनुभव (होना), वह कोई अलौकिक बातें हैं, भाई! आहाहा! इसके बिना इसका संसार का परिभ्रमण के चक्र का अन्त नहीं आएगा, प्रभु! भले मना ले, बाहर से कुछ प्रवृत्ति करे, दया, दान, व्रत, भक्ति और मना ले कि इसमें से अपने को होगा। यह संसार है। उसमें नहीं आया था? समाधि में आया था, भाई! तन, संसार है। आया था न? यह शरीर, वह संसार है, ऐसा कहा है। राग की तो बात क्या करना? आहाहा! वह तो जड़ है, अजीव है, मिट्टी है, जो आत्मा की पर्याय में भी नहीं। आत्मा के द्रव्य-गुण में तो नहीं परन्तु आत्मा की पर्याय में शरीर नहीं। शरीर तो शरीर में है। आहाहा! उस तन को संसार कहा। आहाहा! दो गाथाएँ आयी थीं। कल सज्झाय में। तन-शरीर है तो संसार है, तो राग तो संसार है ही, भाई! आहाहा! जब आत्मा की पर्याय में चीज़ नहीं, उसे संसार कहा.. आहाहा! तो उसकी पर्याय में राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम पर्याय में हैं, (वह) संसार है। आहाहा! उससे रहित प्रभु मुक्तस्वरूप अन्दर है। उसे यहाँ कहते हैं।

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा... शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, भेद से भिन्न। आहाहा! परम सत्य परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का परम सत्य कोई अलौकिक है, भाई! आहाहा! उसे अभी विकृत कर दिया है। आहाहा! जिसे इन्द्र सुनने जाते हैं, जिसे गणधर सुनते हैं, एकावतारी इन्द्र उन प्रभु के निकट सुनने जाते हैं, वह बात कैसी होगी? भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा...** राग से भिन्न, रंग से भिन्न और भेद से भिन्न। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु परमात्मस्वरूप ही अपना है.. आहाहा! कैसे जँचे? उस परमात्मस्वरूप को **भेदविज्ञान द्वारा...** शरीर-वाणी तो मैं नहीं, परन्तु दया, दान के राग के परिणाम, वह मैं नहीं और उसमें गुणस्थान के, जीवस्थान के भेद पड़ते हैं, वह भी मैं नहीं। आहाहा! अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसे भेदज्ञान द्वारा। आहाहा! है?

भेदविज्ञान द्वारा... ऐसा नहीं कहा कि राग द्वारा, निमित्त द्वारा तुझे मुक्ति प्राप्त होगी। आहाहा! **भेदविज्ञान द्वारा...** प्रभु पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसे पर से भेद करके। आहाहा! अब जिससे भिन्न पड़ना है, उस व्यवहार से निश्चय कैसे होगा? शास्त्र में लेख आवे, वह

तो ज्ञान कराने के लिए (बात है)। आहाहा! जिससे भेद करना है, उससे आत्मा की प्राप्ति होगी.. अरे! प्रभु! वह किस प्रकार बनेगा? इसलिए यहाँ **भेदविज्ञान द्वारा...** लिया है। निमित्त से भिन्न, दया, दान और भक्ति के परिणाम से भिन्न तथा एक समय की पर्याय से भी अभेद वह भिन्न चीज़ है। आहाहा!

यह तो दुनिया का करना या यह करना, अब यह क्या करना? इन स्त्री-पुत्र को सम्हालना कि.. बीस वर्ष की युवा अवस्था होती है, स्त्री से विवाह करे, लड़का हो, उसे सम्हालना, पालन करना। क्या करना? अब यह करना या वह करना? होली। आहाहा! अरे! प्रभु! यह तो होली अनन्त काल से की है न, प्रभु! उस होली को तो अब यहाँ तो शान्त करना है। आहाहा!

कहते हैं कि **भेदविज्ञान द्वारा क्रम से...** क्रम से। आहाहा! पहले राग से भिन्न करे, फिर पर्याय के भेद से भिन्न करे। आहाहा! इस **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है...** इस क्रम से निश्चय-चारित्र होता है। **ऐसा कहा है।** अरे रे! यह बात तो पूरी पड़ी रही। निश्चय-चारित्र नहीं, अभी तो शुभयोग ही होता है, शुभराग होता है, लो। आहाहा! श्रुतसागर है, शान्तिसागर के मार्गानुसारी। धर्मसागर आचार्यपद में है और इन्हें आचार्यपद नहीं मिला। वांचन इनका अधिक है। वे ऐसा कहते हैं। समाचार-पत्र में आया था। अभी तो साधु को या सबको शुभयोग ही होता है। यहाँ प्रभु कहते हैं कि शुभयोग है, वह संसार है। अर र! अभी संसार ही होता है, संसाररहित धर्म नहीं होता, (ऐसा) उसका अर्थ हुआ। आहाहा! अभी कान्तिभाई वहाँ गये थे। चातुर्मास वहाँ है न? उस राजमल का गाँव कौन सा? कुचामन, वहाँ चातुर्मास था। राजमल इसके मित्र हैं। कान्तिभाई को उनकी श्रद्धा का मेल खाता है। आहाहा! वहाँ गये थे, थोड़ी बात की, उसमें फिर सुनी परन्तु एक आर्यिका ऐसा बोली कि यह तो तुम सोनगढ़ की बातें करते हो। लो! सच्ची बात होवे, वह सोनगढ़ की और यह उपचारी तथा खोटी बात होवे, वह हमारी - घर की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **भेदविज्ञान द्वारा...** चारित्र कैसे होता है कि पहले राग से भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करे, तब सम्यग्दर्शन होता है; पश्चात् राग की अस्थिरता रहे, उससे छूटकर अन्दर स्थिर हो, तब चारित्र होता है। आहाहा! ऐसा काम बड़ा। कोई सरल नहीं होगा काम? रत्न का हो, हीरा का हो और यह भी हो। दो नहीं होंगे? आहाहा! उसमें

दो-चार लड़कियाँ हों और दो-चार लड़के हों, उनका विवाह करना, उन्हें अच्छी जगह डालना, उन्हें अच्छी जगह अर्थात् इसने माना हुआ अच्छा। अच्छी जगह संसार में है कहाँ? आहाहा!

मुमुक्षु : होवे उसका क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है क्या? इसके पास कहाँ है और इसके कहाँ हैं वे?

मुमुक्षु : इसके भले न हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके कब? सुमनभाई, सुमनभाई में है। रामजीभाई के पास वह कब आया है?

मुमुक्षु : संयोग में तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग तो संयोग का अर्थ क्या हुआ? संयोग का अर्थ भिन्न है, संयोग का अर्थ भिन्न है। संयोग का अर्थ एकत्व है, ऐसा नहीं आया? संयोग न? यह अंगुली और इस अंगुली का संयोग है। संयोग अर्थात् ये तो दोनों भिन्न पड़े हैं। इस अंगुली में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है वे इसके हैं और इस अंगुली का इसे संयोग है। संयोग अर्थात् भिन्न है। एक नहीं। उस एक के यह नहीं। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! चीज़ को तो संयोग कही है, परन्तु पुण्य-पाप के भाव को संयोगभाव कहा है। आता है न, कर्ता-कर्म में। ६९-७० गाथा। संयोगभाव है। वस्तु तो संयोग, वह तो बाहर रह गयी। आहाहा! परन्तु पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के परिणाम को संयोगीभाव कहा है। वह संयोग है, स्वभाव नहीं। आहाहा! अरे! भगवान तो वहाँ तक ले गये हैं। वह संयोग बाहर की चीज़ तो कहीं उसके कारण से है; विकार भी संयोगी उसके कारण से है। आहाहा! परन्तु प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द के नाथ में पर्याय की उत्पत्ति होती है, वह संयोग है। पंचास्तिकाय में है। आहाहा! क्योंकि वस्तु जो है, उसके साथ यह तो निर्मल पर्याय है, वह संयोगी है। उत्पाद है, वह ध्रुव में संयोग है। आहाहा! अरे रे! सुने कहाँ?

पंचास्तिकाय में पाठ है। अठारहवीं गाथा। भगवान आत्मा जो नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप जो एकरूप त्रिकाल है, उसमें पर्याय की उत्पत्ति हो, वह संयोग है और पर्याय

का व्यय हो, वह वियोग है। आहाहा! उस ध्रुव के साथ पर्याय का संयोग-वियोग है। आहाहा! ऐसी जो ध्रुववस्तु है, वहाँ दृष्टि करनी है, कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! नया लगे; नहीं सुना हो, इसलिए सूक्ष्म लगे, परन्तु मार्ग यह है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि के लिए है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि, परन्तु पहले श्रद्धा और ज्ञान समकित पहला है या नहीं? पहला भेदज्ञान राग से भेद करना, वह स्वभाव समकिती में है या नहीं? पश्चात् यह तो विशेष स्थिरता.. अस्थिरता से भिन्न करके चारित्र, वह चारित्र की व्याख्या है।

मुमुक्षु : पूरा शास्त्र आचार्यदेव ने स्वयं के लिए लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्यों के लिए ही लिखा है। स्वयं के लिए क्या लिखे? वह तो अपनी भावना के लिए कहा है। निज भावना के लिए। परन्तु लिखा है दूसरे के हेतु का। दूसरे समझे कि ऐसी भावना सन्तों की थी। आहाहा! मैंने मेरी भावना के लिए नियमसार बनाया है, ऐसा पाठ अन्तिम गाथा में है। आहाहा! है अन्तिम, देखो! १८७ गाथा है।

'**णियभावणाणिमित्तं मए कदं णियमसारणामसुदं। णच्चा जिणोवदेसं**' जिन (देव) का उपदेश सुनकर, जानकर मैंने यह किया है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के मुनि हैं, वे कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिए यह बनाया है। वह भी '**णच्चा जिणोवदेसं**' तीन लोक के नाथ के उपदेश को जानकर मैंने यह बनाया है। है? '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्व और पर में दोषरहित है यह। आहाहा! समकिती को भी राग से भिन्न करके भेदज्ञान करना है। चारित्रवाले को अस्थिरता से भिन्न करके स्थिरता का भेदज्ञान करना है। आहाहा! भेद अभ्यास है न? वह भी इसमें आता है। २०५। २०५ पृष्ठ है न? उसमें यह आता है।

'**एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ**' १०६ गाथा है। १०६ गाथा है। है? '**एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।**' ठीक। जीव और कर्म दो का भेदज्ञान जो अन्दर करे, उसे '**पच्चक्खाणं सक्कदि**' उसे सच्चा प्रत्याख्यान हो सकता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। परन्तु क्या हो? अनादि से भटकता है और बाहर की प्रवृत्ति के कारण इसे निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! भेद-अभ्यास... १०६ गाथा। पृष्ठ २०५, गाथा १०६। भेद-अभ्यास।

आहाहा! वहाँ तो जीव और कर्म का भिन्न अभ्यास कर, ऐसा कहते हैं। यहाँ भी पहले से अन्त तक का भिन्न अभ्यास कर, ऐसा कहा है। वह है, वह निश्चयप्रत्याख्यान है। आहाहा! गजब! इस प्रकार का उपदेश! पकड़ने में कठिन पड़े। कर तो कब सके। आहाहा! मस्तिष्क में, सिर में उतारना कि यह क्या कहते हैं?

ऐसा शरीर, साथ में कर्म, साथ में राग, साथ में पुण्य-पाप और पर्याय का भेद। ऐसी वस्तु होने पर भी कहते हैं कि उस भेद-राग और वस्तु से अन्दर भिन्न चीज़ है। आहाहा! तू जिसे परमात्मा का आत्मा कहलाता है, वह तू अत्यन्त भिन्न है। परमात्मा का स्वरूप ही तेरा है। यदि परमात्मा का स्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मपना आएगा कहाँ से? कहीं बाहर से आता है?

छोटी पीपर में चौंसठ पहरी पीपर की चरपराहट भरी है। चरपराई-चरपराई। वह छोटी पीपर नहीं होती? छोटी पीपर? काली। वह चौंसठ पहरी अन्दर चरपराई, चरपराई भरी है। उसे घोंटते हैं, तब आती है-वह कहाँ से आती है? घोंटने से आती है? घोंटने से आवे तो लकड़ी और कोयले को घोंटे नहीं? उसमें है? चौंसठ पहरी अर्थात् सोलह आना। रुपया, रुपया (परिपूर्ण) चरपराहट का भाव अन्दर पड़ा है और हरा रंग पूरा पूर्ण... पीपर अवगाहन छोटा, रंग काला तो भी उसके स्वभाव में सोलह आना चरपराई और चरपराहट और हरा रंग पड़ा है।

इसी प्रकार प्रभु इस देह-प्रमाण होने पर भी तथा राग और द्वेष की पर्याय में दिखने पर भी, वह भगवान आत्मा उनसे अत्यन्त भिन्न है। सोलह आना अर्थात् उसमें पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता अन्दर भरी है। अरे रे! यह बाहर की बात माने, परन्तु स्वयं कितना है, (उसकी खबर नहीं होती)। आहाहा!

भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... कहा न? क्रम से कहने पर पहले राग से भिन्न करके सम्यग्दर्शन करे। पश्चात् राग की अस्थिरता से भिन्न करके स्थिरता करे। क्रम से कहा न? आहाहा! यह तो भगवान सन्तों के वचन हैं। दिगम्बर मुनियों के वचन हैं। वे तो केवली के मार्गानुसारी हैं। भगवान तीन लोक के नाथ तीर्थंकर के पुत्र हैं वे तो। गणधर को पुत्र कहा है। सन्त नन्दन हैं। परमात्मा के नन्दन, जिनेश्वर के नन्दन हैं। समकिती को जिनेश्वर के नन्दन कहा है तो वे (मुनि) तो बड़े पुत्र हैं। आहाहा! मुनि अर्थात्, बापू! यह तो अभी

तो क्या कहना ? आहाहा ! अरे ! सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, वहाँ मुनिपना तो कहाँ रहा ? आहाहा ! कठिन काम, भाई !

यहाँ तो परमात्मा का विचार करने पर सब परमात्मा होओ। कोई भी प्राणी संसार में न रहो। आहाहा ! परमात्म पद को प्राप्त करो, भाई ! परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है। ऐसी स्थिति को समझे बिना, माने बिना, स्थिर हुए बिना, परमात्म पद प्राप्त नहीं होगा, भाई ! आहाहा !

यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा क्रम से... शब्द प्रयोग किया है न ? पहले राग के विकल्प और भेद से भिन्न अभेद है, ऐसी दृष्टि / सम्यग्दर्शन करना, पश्चात् जो अस्थिरता का राग है, उसे छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना। ऐसे **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है...** इसमें क्रम से निश्चय-सच्चा चारित्र होता है। आहाहा ! अभी पहले से जिसे भेदज्ञान नहीं, राग से जिसे भेदज्ञान नहीं, उसे तो चारित्र होता ही नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **भेदविज्ञान द्वारा...** आहाहा ! यह श्लोक रखेंगे। फिर अन्दर श्लोक कहेंगे, हों ! बाद में श्लोक कहेंगे। संवर अधिकार का, समयसार का। अभी तक जो कोई सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए। है देखो पीछे। बाद के श्लोक में। **जो कोई सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;...** यह संवर अधिकार का श्लोक है। पीछे है। है ? अभी तक जितने मुक्ति को प्राप्त हुए परमात्मा—णमो सिद्धाणं... जितने सिद्ध हुए, वे सब भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं। कोई राग से, विकार से और व्यवहाररत्नत्रय से मुक्त हुए हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा ! व्यवहार का विकल्प है, उससे भी भेद करके सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् अस्थिरता का भेद करके स्थिर हुए हैं। आहाहा ! ऐसा स्वरूप है। मार डाले परन्तु यह जगत की जंजाल। बाहर की चमक..

कहा नहीं था ? एक बार हम गये थे। है न वहाँ ? मणिभाई मुम्बई में है। पाँच-छह करोड़ रुपये। आहार करने गये थे। फिर कितने ही वे हॉल... तुम्हारे क्या कहलाते हैं ? हॉल में मखमल बिछाया हुआ। पाँच लाख रुपये का तो वह होगा। फर्नीचर इतना। अपने शान्ताबहिन की बहिन के नन्दोई हैं। वहाँ मुम्बई में रहते हैं। एक बार वहाँ आहार करने गये थे। एक भाई था। गुना का एक भाई बहुत अच्छा लड़का था, होशियार था। विजय। बहुत लड़का वैसा था। प्रेम बहुत था परन्तु एकदम उसे अन्दर से हो गया। फिर उसे दर्शन देने गये थे। वह जमशेदपुर का वहाँ है टाटा का, वहाँ नौकर था। एक वर्ष का विवाहित। बेचारे

को उसकी माँ ने किडनी दी, परन्तु देह छूट गयी। एक वर्ष का विवाहित। बापू! कब देह को क्या (होगा, क्या खबर है)। यह हड्डियाँ चमड़ी। कब कहाँ होगा? यहाँ होगा या यहाँ होगा या यहाँ होगा। आहाहा! वह रूपवान लगे परन्तु वे सब हड्डियाँ हैं। आहाहा!

एक अभी वहाँ स्वाध्यायमन्दिर में एक कौवा कुत्ते का मुख पुरानी हड्डी का... बाहर है न बाहर उस ओर का भाग। स्वाध्यायमन्दिर का। दरवाजे के बाहर। वहाँ हड्डी का इतना पड़ा हुआ। कुत्ते का पुराना सड़ गया हड्डी का मुख। कौवा लाया होगा। वहाँ छोड़कर भाग गया। वहाँ पड़ा था। फिर भंगिन आयी थी, बेचारी ले गयी। आहाहा!

यह हड्डियाँ, यह चमड़ी.. अब उसमें अपनापन मानना और उसके रूप में मोह। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ उलझ गया? तुझमें आनन्द है न! इस राग से भिन्न कर न, प्रभु! ऐसा कहते हैं। वह राग है, वह दुःख है, प्रभु! यह विषय का राग, इज्जत का राग, पैसे का राग, कमाने का राग, वह दुःख है, आकुलता है। माणेकचन्दभाई! आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा होवे तो ही लोग सुखी होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा में धूल भी सुख नहीं। हैरान-हैरान है बेचारा। पूरे दिन सिरपच्ची। इसका यह लाये, इसका यह आया। उसमें छह-छह लड़के, सात-सात लड़के हों, सब कमाते हों और दो-दो लाख की महीने में आमदनी करते हों। मानों ओहोहो! हम कहाँ चढ़े हैं? कितने ऊँचे चढ़े? कितने नीचे उतरे हैं, इसकी खबर नहीं है। गरीब व्यक्ति भी यदि समकित प्राप्त करे तो वह ऊँचा चढ़ गया है और यह सब मिथ्यात्व भ्रान्ति में पड़े हैं, वे सब नीचे पड़े हैं।

यहाँ यह कहते हैं, **भेदविज्ञान द्वारा...** यह आया न? जो कोई सिद्ध हुए, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए, जो कोई बँधे, उसके-भेदविज्ञान के अभाव से बँधे हैं, ऐसा कहा। कर्म से बँधे हैं और कर्म के कारण (बँधे हैं), ऐसा नहीं कहा। पर से भिन्न करने के अभाव से बँधे हैं और जितने छूटे हैं, वे पर से भिन्न करके छूटे हैं। इसलिए भेदज्ञान की पहली बात इसमें ली है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)